International Journal of Sanskrit Research 2016; 2(5): 28-30

International Journal of Sanskrit Research

अनन्ता

ISSN: 2394-7519
IJSR 2016; 2(5): 28-30
© 2016 IJSR
www.anantaajournal.com
Received: 10-07-2016
Accepted: 11-08-2016

रश्मि पाल
शोध छात्रा पी.एच.डी (संस्कृत)
दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

Correspondence
रश्मि पाल
शोध छात्रा पी.एच.डी (संस्कृत)
दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

सांख्य दर्शन में पुरूष और प्रकृति चिंतन धारणा

रश्मि पाल

प्रस्तावना

भारतीय दर्शन में सांख्य दर्शन का महत्त्वपूर्ण स्थान है। सांख्य दर्शन आस्तिक दर्शन की श्रेणी में आता है। सांख्य दर्शन द्वैतवादी और निरीश्रवादी दर्शन के अन्तर्गत आता है। सांख्य आध्यात्मिक विद्या का सैद्धान्तिक रूप का प्रतिपादक दर्शन है अन्य दर्शनों की भाँति सांख्य दर्शन का भी अंतिम लक्ष्य विविध दुःखों की निवृत्ति करके कैवल्य को प्राप्त करना है जो कि तत्त्व ज्ञान की प्राप्ति होने पर ही संभव है। तत्वज्ञान ही आत्मज्ञान है।

सांख्य दर्शन मौलिक रूप से दो तत्त्वों को स्वीकार करता है– पुरूष और प्रकृति। इन दो तत्त्वों की सिद्धि अनुमान और आगम प्रमाणों द्वारा की गयी है। इसके माध्यम से मानव की मुक्ति का मार्ग प्रशस्त किया गया है क्योंकि तत्वज्ञान से ही परम पुरूषार्थ रूपी मोक्ष की प्राप्ति होती है। तत्त्वज्ञान पुरूष को प्राप्त होता है। पुरूष से तात्पर्य सशरीर व्यक्ति से होता है किन्तु सांख्य दर्शन में पुरूष का अर्थ शरीर, मन, बुद्धि अन्य अंहकार आदि से भिन्न विशुद्ध आत्मा से लगाया है।

सांख्य दर्शन मे त्रय गुणों की साम्यावस्था को प्रकृति माना गया है। प्रकृति जड़ और एक है। प्रकृति और पुरूष के संयोग से सृष्टि की उत्पत्ति मानी गयी है। इस प्रकार सांख्य दर्शन में सामान्यतः यह देखने को मिलता है कि पुरूष और प्रकृति एक दूसरे के पूरक है और सांख्य दर्शन के मूल तत्त्व में उपस्थित है।

सांख्य दर्शन के द्वय तत्त्वः प्रकृति और पुरूष

प्रथम तत्त्व पुरूषः सांख्य दर्शन में पुरूष आत्मतत्त्व का वाचक शब्द है। पुरूष चैतन्य स्वरूप, कूटस्थ, निरवयव असङ्ग,[1] अपरिणामी, नित्यशुद्धबुद्धमुक्तस्वभाव, निरूञ्जन [2] तथा अनेक है। पुरूष अव्यक्त तथा व्यक्त प्रकृति से भिन्न (अत्रिगुणात्मक), विवेकी, अविषय, असामान्य, चेतन तथा अपरिणामी है। [3]

पुरूष नित्यशुद्धस्वभाव, नित्यबुद्धस्वभाव और नित्यमुक्त स्वभाव है। शुद्ध का तात्पर्य– पुरूष में किसी प्रकार के विकार का न होना। प्रकृति अशुद्ध है क्योंकि वह परिणामी है। पुरूष के सर्वथा निष्क्रिय और कूटस्थ होने के कारण उसमें किसी प्रकार का विकार उत्पन्न नहीं होता जो सुख–दुख आदि की प्रतीति होती है वह बुद्धि प्रतिबिम्बित छाया पुरूष की होती है, जो अवास्तविक है, वास्तविक पुरूष सदैव समान बना रहता है, अतः पुरूष नित्यशुद्धस्वरूप है। [4], बुद्ध का अर्थ–चेतन या ज्ञानस्वरूप। [5] चेतनता पुरूष का गुण नहीं, अपितु स्वभाव है। वह सदा चेतन रूप में अवस्थित रहता है। पुरूष ज्ञान का अधिष्ठाता है। ज्ञान, विराग आदि बुद्धि के धर्म है किन्तु बुद्धि में ज्ञान, विराग, आदि बिना पुरूष की सन्निधि के नहीं होते।

मुक्त का अर्थ– दुःखों से छुटा हुआ। [6], दुःख का मूल कारण त्रिविध गुण (सत्त्व, रज और तम) है जो प्रकृति के स्वरूप है। पुरूष त्रिगुण रहित है। उदासीन, कूटस्थ होने के कारण वह इन सभी गुणों से प्रभावित नहीं होता है अतः वह अविकारी है। बन्धन और मोक्ष प्रकृति के होते हैं पुरूष कभी भी नहीं बँधता है और न ही मुक्त होता है। [7], वह कार्यकारण की श्रृंखला से परे है। अतः सदा बन्धन रहित होने से नित्य मुक्त स्वभाव है।

पुरूष के अस्तित्व के प्रमाण

सांख्य दर्शन के सांख्य सूत्रों और सांख्यकारिका [8] में पुरूष [9] की सिद्धि हेतु प्रबल सूत्र और कारिका दी गयी है जिसमें पञ्ज तर्कों से बताया गया है कि पुरूष का अस्तित्त्व है। 'मैं जानता हूँ', ''मैं अनुभव करता हूँ'' इस प्रकार की वृत्ति का ज्ञान होने पर पुरूष की सिद्धि होती है। [10] सांख्य कारिका में वर्णित पुरूष अस्तित्त्व हेतु पञ्च तर्क निम्नवत् है–

1. संघातपरार्थत्वात्: संघात अथात् प्रदार्थ सदैव अन्य प्रयोजन के लिये होता है। जैसे पलंग का अपने में कोई उपयोग नहीं है, उसका उपयोग व्यक्ति सोने के लिए करता है संघात् सदैव दूसरे के लिए होता है। अतः पलंग (संघात्) इसके उपयोगकर्त्ता पुरूष के अस्तित्त्व को सिद्ध करता है।

2. त्रिगुणादिविपर्यमात्: संसार में जितनी भी वस्तुएँ है उन सभी में त्रय गुणों (सत्व, रज और तम) का समावेश रहता है। यह बात अलग है कि उनमें कोई गुण कम और कोई अधिक होता है। इनका यह न्यूनाधिक्य हमें इस निष्कर्ष पर पहुँचने पर बाध्य करता है कि पुरूष ही ऐसा तत्त्व है जो कि त्रय गुणों से रहित है।

3. अधिष्ठानाच्चेतिः जितना सुख–दुःख मोहात्मक अचेतन जगत् है, सब त्रिगुणात्मक है और प्रत्येक त्रिगुणात्मक वस्तु का कोई न कोई अधिष्ठाता रहता है जो त्रिगुणरूप अचेतन में प्रवृति का हेतु होता यथा रथ– सारथी से अधिष्ठित होकर सारथी को गन्तव्य तक पहुँचाता है उसी प्रकार सुख–दुःख मोहात्मक महदादि से लेकर स्थूलभूत निर्मित शरीर पर्यन्त जितना यह जड़ संघात है, उसमें प्रवृति का हेतु रूप कोई न कोई अधिष्ठाता होना चाहिए, वही चेतन अधिष्ठाता पुरूष है। [11]

4. भोक्तृभावात्: जगत के प्रदार्थ जो कि सुख–दुःख आदि उत्पन्न करते है, भोग्य करने योग्य है, किन्तु अब यह प्रश्न उठता है कि इन भोग्य प्रदार्थों का भोक्ता कौन है, भोग्य स्वयं भोक्ता नहीं हो सकता है। अतः इन भोग्य प्रदार्थों को भोग करने की शक्ति पुरूष ही में होती है। अतः इनके भोक्ता के रूप में पुरूष का अस्तित्व सिद्ध होता है।

5. कैवल्यार्थप्रवृर्त्तश्चः कैवल्य मोक्ष को कहते हैं। त्रिविध दुःखों की आत्यन्तिक निवृत्ति ही मोक्ष है। [12] जगत् में दुःख की निवृति हेतु प्रयत्न करते हैं। यह प्रयत्न जड़ प्रदार्थ नहीं करते हैं। अतः जड़ प्रदार्थों से भिन्न चेतन पुरूष मोक्ष का प्रयत्न करता है।
इस प्रकार पञ्चविध हेतुओं से प्रतिपादित हो जाता है कि पुरूष की सत्ता है।

पुरूष एक या अनेकः पुरूष की सत्ता सिद्ध होने के बाद यह जिज्ञासा उत्पन्न होती है कि पुरूष एक या अनेक है। इसी समस्या का निराकरण हेतु सांख्यकारिका में कारिका उदधृत की गयी है जिसमें पुरूष बहुत्व की सिद्धि हेतु तर्क दिये गये हैं।

> जनन मरण करणानां प्रतिनियमादयुपत्प्रवृत्तेश्च।
> पुरूषबहुत्वं सिद्धं त्रेगुण्यविपर्ययाच्चैव [13]

अर्थात् प्राणियों के जन्म मरण और करणों की व्यवस्था होने से, सभी प्राणियों की एक साथ प्रवृत्ति न होने से अर्थात् अलग–अलग प्रवृत्ति होने से तथा सभी प्राणियों में तीनों गुणों की असमान रूप से स्थिति होने से पुरूष का अनेकत्व तो सिद्ध ही है। सांख्य सूत्रों [14], और सांख्यकारिका में पुरूष बहुत्व सी सिद्धि तर्कों के आधार पर निम्नवत् है–

1. जन्मरणकरणानां प्रतिनियमात्: जन्म मरण की व्यवस्था से पुरूष के अनेकता की सिद्धि होती है। देह, इन्द्रिय, मन, अहंकार बुद्धि एवं वेदनाओं के संघात के साथ पुरूष के सम्बन्ध को जन्म कहते हैं और फिर देहादि के परित्याग को मरण कहा जाता है। [15] इसे पुरूष का विनाश नहीं समझना चाहिए क्योंकि वह तो कूटस्थ एवं नित्य है। बुद्धि, अंहकार एवं एकादश इन्द्रिया करण है। इस जन्म–करण और करण भी प्रतिशरीर में एक व्यवस्था दिखलाई देती है जैसे– कुछ लोग निम्न श्रेणी में जन्म लेते हैं, कुछ मध्यम श्रेणी में और कुछ उच्च श्रेणी में। यदि एक ही पुरूष होता तो वहाँ पुरूष तीनों कुलों में उत्पन्न होता, किन्तु ऐसा नहीं होता। इससे सिद्ध होता है कि पुरूष अनेक है। [16]

2. अयुगप्रवत्तेश्चः सभी प्राणियों की एक साथ प्रवृत्ति नहीं होती, इससे सिद्ध होता है कि पुरूष अनेक है। प्रवृत्ति प्रयोजन मूलक है और उसमें प्रयोजन पुरूष के द्वारा भी संपादित होता है एक ही पुरूष सभी शरीरों में एक साथ प्रवृत्ति (चलना, उठना, बैठना, खाना और पीना, आदि) करते दिखाई पड़ना चाहिये किन्तु ऐसा संभव नहीं है। अतः पुरूष अनेक है। श्रुति का भी कथन है कि जब एक पुरूष भोग करता है, तो दूसरा त्याग। [17] अतः पुरूष एक नहीं अनेक है।

3. त्रिगुणादिविपर्ययाच्चैवः सत्व, रज, एवं तम इन गुणों को समवेत रूप में त्रैगण्य कहते हैं और इनका समानुपात में रहना ही विपर्यय है। संसार के सभी जीवों में गुण वैषम्य पाया जाता है। किसी में सत्त्व, किसी में रज और किसी में तम की प्रधानता मिलती है। यह वैषम्यता ही पुरूष की बहुत्व को सिद्ध करता है।
उपयुक्त तीन हेतुओं से सिद्ध होता है कि पुरूष एक नहीं, अपितु अनेक है।

द्वितीय तत्त्वः प्रकृति सामान्य रूप से प्रकृति से तात्पर्य हमारे चारों ओर के व्याप्त वातावरण से है किन्तु सांख्य दर्शन में प्रकृति का अर्थ यह नहीं है। सांख्य दर्शन जगत का मूल कारण प्रकृति को मानते हैं। सांख्य दर्शन में प्रकृति को प्रधान, अविद्या, जड़, अव्यक्त और अविनाशी आदि नामों से सम्बोधित किया गया है।
सांख्य दर्शन प्रकृति को समस्त जगत् की जननी के रूप में मानता है किन्तु वह स्वयं अजन्मा है। इसका कोई कारण नहीं है, सृष्टि का आदि कारण मूल प्रकृति है। यह समस्त विश्व का कारणभूत प्रथम मौलिक तत्त्व है। अतः इसे प्रधान कहा जाता है। इसमें समस्त कार्यजगत् अव्यक्त रूप से विद्यमान रहते हैं, अतः यह अव्यक्त कहलाती है। प्रकृति त्रिगुणात्मक, अविवेकी, विषय सामान्य तथा प्रसवधर्मी है।[18] प्रकृति त्रिगुणात्मक (सत्व, रज और तम) गुणों की साम्यावस्था है। ये त्रिगुण प्रकृति के सुख–दुःख मोहात्मक है किन्तु अचेंतन होने से प्रकृति को उनका सुख–दुःख अनुभव नहीं हो पाता और पुरूष इसका भोग करता है। प्रकृति विकारी तथा परिणामी है, समस्त जगत् की उत्पत्ति प्रकृति से होती है, इसलिये प्रसवधर्मिणी है, किन्तु अचेतन हैं बिना चेतन पुरूष के संयोग से प्रकृति में प्रसवधर्मिता नहीं आ सकती। प्रकृति स्वंतत्र, नित्य, एक तथा व्यापक है। सृष्टि के समय समस्त जड़ जगत् प्रकृति कि गर्भ से कार्यरूप में अभिव्यक्त होता है तथा प्रलय के समय पुनः प्रकृति के गर्भ में विलीन हो जाती है, इसलिए प्रकृति जगत् का मूल कारण है।

प्रकृति की सिद्धि में प्रमाणः जगत् का मूल कारण प्रकृति है। इसकी सिद्धि के लिये सांख्यकारिका की 15 वीं कारिका में पञ्ज [19] युक्तियाँ दी गयी है। जो निम्न हैं–

1. जगत् के प्रदार्थोंः का कारण असीम प्रकृति–जगत् के सम्पूर्ण प्रदार्थ सीमित, परिमित तथा परतंत्र है, इनका मूल कारण अवश्य ही अपरिमित तथा स्वतंत्र होना चाहिए वह जो है, वही प्रकृति है।

2. त्रिगुणयुक्त जगत् का मूल कारण त्रिगुणात्मका प्रकृतिः संसार के सभी प्रदार्थ त्रिगुणात्मक है। प्रत्येक प्रदार्थ सुख–दुःख तथा मोहात्मक करने वाले हैं। कार्य से कारण की सत्ता सिद्ध होती है तथा कार्य के गुण कारण में रहते हैं, यह जो कारण है, वही प्रकृति है।

3. जगत् को उत्पन्न करने की शक्ति प्रकृति में हीः समस्त कार्य, कारण की शक्ति से उत्पन्न होते हैं, यथा– तिल में तेल को

उत्पन्न करने की शक्ति होती है इसीलिए उससे तेल उत्पन्न होता है। इसी प्रकार महत् (बुद्धि) आदि को उत्पन्न करने की शक्ति प्रकृति में होती है। अतः शक्तिमती प्रकृति ही जगत् का मूल कारण है।

4. कारण–कार्य विभाग से प्रकृति की सिद्धिः व्यक्तावस्था में कार्य का कारण से विभाग रहता है। यह विभाग सिद्ध करता है कि अव्यक्त कारण से ही समस्त कार्य उत्पन्न होते हैं। यह अव्यक्त कारण प्रकृति है।

5. प्रलयकाल से सिद्धिः जिस प्रकार कारण–कार्य विभाग का क्रम है उसी प्रकार प्रलयकाल का। यथा–घड़ा टूटने पर मिट्टि में मिल जाता है उसी तरह प्रलयकाल में पृथ्वी आदि भूत तन्मात्राओं में, तन्मात्राएँ अहँकार में, अहंकार बुद्धि में और बुद्धि अव्यक्त अर्थात् प्रकृति में लीन हो जाती है। विश्व के समस्त प्रदार्थ प्रलय में पुनः लीन होकर कारण से अभिक्त बन जाते हैं, वह मूल कारण ही प्रकृति है इस प्रकार प्रकृति का अस्तित्त्व सिद्ध होता है।

इस प्रकार इन पञ्च उक्तियों से प्रकृति की सत्ता सिद्ध होती है। सांख्य दर्शन के दैतवादी विचारों के रूप में स्पष्ट रूप से द्रष्टव्य है कि पुरूष और प्रकृति एक–दूसरे के पूरक होने के साथ–साथ विपरीत तत्त्व भी है। जैसे प्रकृति जड़, अविद्यात्मक, त्रिगुणात्मक, विकारों को उत्पन्न करने वाली, सक्रिय, एक, बंधन और भोग्या है वहीं पुरूष चेतन, ज्ञान, स्वरूप, त्रिगुणातीत गुणों से रहित विकारों से दूर, निष्क्रिय, मुक्त, अनेक और भोक्ता है।

संदर्भ

1. असङ्गोऽयं पुरूषः इति। सांख्यसूत्र 1/40
2. नित्यशुद्धो नित्यबुद्धो नित्यमुक्तो निरञ्जनः। स्वप्रकाशो निराधारः प्रदीपः सर्ववस्तुषु। सांख्य सार उत्तरभाग प्रथम परिचछेद 22
3. त्रिगुणमविवेकि विषयः सामान्यमचेतनं प्रसवधर्मि। व्यक्तं तथा प्रधानं तद्विपरीतस्तथा च पुमान। सांख्यकारिका 11
4. सांख्य सिद्धांत, शास्त्री उदयवीर, पृष्ठ 22
5. वहीं, पृष्ठ 22
6. वहीं, पृष्ठ 23
7. तस्मान्न बध्यतेऽद्धा न मुच्यते नापि संसरति कश्चित् संसरति बध्यते मुच्यते च नानाश्रयां प्रकृतिः। सांख्यकारिका–62
8. सहतपरार्थत्वात्। सांख्य सूत्र– 1/40
   त्रिगुणादिविपर्ययात्। वही– 1/41
   अधिष्ठानाच्चेति। वहीं 1/42
   भोक्तृभावात् । वहीं – 1/43
   कैवल्यार्थ प्रवृतेश्च। वहीं– 1/44
9. सङ्घातपरार्थत्वात् त्रिगुणादिविपर्ययादधिष्ठानात्। पुरूषोऽस्ति भोक्तृभावात् कैवल्यार्थं प्रवृत्तेश्च। सांरख्कारिका –17
10. तत्र सामान्यतः सिद्धोजानेऽदवमितिधीबलात्। सांख्यसार, पृष्ठ–20
11. तद्यथेह लोकेलङघनल्पवनधावन समर्थेखैयुक्तोरथः सारिथनाम्धिष्ठितः प्रवर्त्तते। सांखकारिका माठरवृत्ति –17
12. कैवल्यमात्यान्तिक। सांख्यतत्त्वकौमुदी–17
13. जननमरणकरणानां प्रतिनियमादयुगप्रत्प्रवृत्तेश्च। पुरूषबहुत्वं सिद्धं त्रैगुण्यविपर्ययाच्चैव। सांख्यकारिका–18
14. जन्मादिव्यवस्थातः पुरूषबहुत्वम्। सांख्यसूत्र – 1/149–150
15. तेषामेव च देहादीनामुपात्तानां परित्यागो मरणम्, नत्वात्मनो विनाशः तस्य कूटस्थनित्यत्वात्। सांख्यतत्त्वकौमुदी– 18
16. तदा खल्वेकस्मिन् पुरूषे जायमाने सर्व जायेरन् म्रियमाणै च म्रियेरन्, अन्धादौ चैकस्मिन् सर्व एव अन्धादयः विचित्ते चैकस्मिन् र्व एक विचित्ताः स्युरित्यव्यवस्था स्यात्; प्रतिक्षेत्रं तु पुरूषभैद भवति व्यवस्था। सांख्यतत्त्वकौमुदी– 18
17. अजोह्मको जुषमाणोटनुशेते। जहात्येनां भुक्तभागमजोटन्यः ।।– श्वेतोश्वतरोपनिषद् 4/5
18. त्रिगुणामविवेकि विषयः सामान्यचेतनं प्रसवधर्मि। व्यक्तं तथा प्रधानं तद्विपरीतस्तथा च पुमान्। सांख्यकारिका–11
19. भेदानां परिमाणात् समन्वयाच्छक्तितः प्रवृत्तेश्च। कारणकार्यविभागादविभागाद् वैश्वरूप्यस्य। सांख्यकारिका 15